स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १९ } गौराब्द ४८७, मास—पद्मनाभ ५, वार—संकर्षण,
सोमवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०३०, १७ सितम्बर, १९७३ { संख्या ४

सितम्बर १९७३

श्रीब्रह्माकृतं श्रीश्रीभगवन्महिमा-स्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत २।५।९-२०)

श्रीब्रह्मोवाच—

सम्यक् कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ।
यदहं चोदितः सौम्य भगवद्वीर्य-दर्शने ॥१॥

(श्रीनारदजीने भ्रमके कारण पहले ब्रह्माजीको स्वतन्त्र परमेश्वर समझा था । पश्चात् उन्होंने देखा कि ब्रह्माजी बहुत ही स्थिरचित्त होकर तपस्या कर रहे हैं । इससे उनको यह ज्ञान हुआ कि उनके भी कोई प्रभु हैं । अतएव उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा कि उनके ज्ञानदाता, आश्रय कौन हैं एवं वे जिनके अधीन हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष कौन हैं ? ऐसे प्रश्नोंको सुनकर ब्रह्माजी परमेश्वर भगवानकी महिमाका वर्णन करने लगे ।)

ब्रह्माजीने कहा—हे पुत्र ! तुम्हारा यह संदेह अत्यन्त युक्तिसंगत है। तुमने जो मुझसे यह प्रश्न किया है, इसके द्वारा मेरे प्रति करुणा ही प्रकाश की गई है। क्योंकि मैं भगवानके तत्वका कीर्त्तन कर भगवानकी विश्व-रचना आदि वीर्य-दर्शनमें प्रेरित हुआ हूँ अर्थात् यह कीर्त्तन करते समय मानसमें अनन्तवीर्य भगवानका दर्शन करूँगा ॥१॥

नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ।
अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्व यतो हि मे ॥२॥

हे पुत्र ! तुम मुझे सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कहकर सम्बोधित कर रहे हो, यह भी मिथ्या नहीं है। क्योंकि मनुष्य लोग मुझसे भी श्रेष्ठ एक परमेश्वर है, यह बात न जानकर ही मुझे इस प्रकार कहा करते हैं ॥२॥

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ।
यथार्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥३॥

यह विश्व स्वप्रकाश भगवान द्वारा ही प्रकाशित है। मे केवल उनकी ही शक्तिसे (पिष्ट पेष न्याय अवलम्बन कर) उस भगवत्प्रकाशित वस्तुको ही फिरसे सृष्टि द्वारा प्रकाशित करता हूँ। जिस प्रकार सूर्य, अग्नि, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रादि चैतन्य प्रकाश सभी वस्तुओंको ही वे प्रकाश किया करते हैं ॥३॥

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
यन्मायया दुर्जयया मां वदन्ति जगद्गुरुम् ॥४॥

उन भगवान वासुदेवको नमस्कार है। उनका हम ध्यान करते हैं। उनकी दुष्पार माया द्वारा आवृत होकर साधारण व्यक्ति मुझे ही जगद्गुरु कहा करते हैं। किन्तु वे नहीं जानते कि मेरे भी एक प्रभु हैं ॥१२॥

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥५॥

कपटी स्त्री जिस प्रकार पीछे स्वामी मेरी कपटता जान लेंगे, इस भयसे स्वामीके सम्मुख आनेमें लज्जा करती है, उसी प्रकार कृष्णदासी जड़माया भी जीव-मोहन कार्य भगवानके लिए रुचिकर नहीं है,यह जानकर नीच कार्य करनेवाली स्त्री तरह भगवान्के साक्षात् दृष्टिगोचर होनेमें लज्जा अनुभव करती हैं। सभी जीव भगवानके पिछले भागमें स्थित माया के द्वारा मोहित होने पर विपरीत-बुद्धि प्राप्त करते हैं तथा देह और मनको आत्मा समझकर 'मैं-मेरा' रूप दम्भ किया करते हैं ॥१३॥

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव ।
वासुदेवात् परो ब्रह्मन् न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥६॥

उपादान रूप महाभूतादि द्रव्य, जन्मनिमित्त कर्म, गुणक्षोभक काल, उसके परिणाम के कारण रूप स्वभाव, भोक्ता जीव—इनमेंसे कोई भी वस्तुकी ही वासुदेवसे भिन्न सत्ता नहीं है। (क्योंकि द्रव्यादि मायाके कार्य हैं एवं जीव तथा माया भगवच्छक्ति हैं। अतएव विश्वका वासुदेवरूपत्व ही प्रमाणित हुआ) ॥१४॥

नारायणपरा वेदा देवा नारायणांगजाः ।
नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥७॥

श्रीनारायण ही उपास्य रूपसे वेदके तात्पर्य विषय हैं। दूसरे सभी देवता लोग उपास्य रूपसे कहे जाने पर भी वे नारायणके अंगसे उत्पन्न हैं अर्थात् नारायणके प्रभाव द्वारा ही उनका प्रभाव है। वे नारायणके अधीन-तत्व हैं। स्वर्गादि जो सभी लोक हैं, वे भी उनके आनन्दांशके आभास रूपमात्र हैं। सभी यज्ञ भी नारायण पर अर्थात उनकी प्राप्ति के साधन स्वरूप हैं ॥७॥

नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥८॥

अष्टांग या सांख्य योगादि भी नारायणपर हैं, तपस्याके भी परम कारण नारायण हैं, उनके साध्य ब्रह्म-ज्ञानादि भी नारायणपर अर्थात् उनका आंशिक स्वरूप प्रकाश किया करते हैं। मोक्षके भी परम विषय नारायण ही हैं ॥८॥

तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ।
सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥९॥

वे नारायण ही एकमात्र सर्वाध्यक्ष, सर्वसाक्षी, सर्वान्तर्यामी, सभी भूतोंके अन्तरात्मा हैं। मैं उनके द्वारा ही सृष्ट हूँ, मैं उनकी ईक्षण शक्ति द्वारा प्रेरित होकर उनकी सृज्यवस्तु सभीकी सृष्टि किया करता हूँ ॥१७॥

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।
स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभो ॥१०॥

वे विभु परमेश्वर निर्गुण हैं। उनकी स्वतन्त्रताके कारण सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयके लिए सत्व, रजः एवं तमः—इन तीन प्रकारके गुणोंको माया उनके द्वारा चालित होकर ग्रहण करती है ॥१०॥

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ।
बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥११॥

अतएव गुणसमूह भगवानकी तटस्थ शक्तिवृत्तिरूप जीवको बन्धनमें डाल देते हैं। तटस्थ शक्ति प्रकटित होनेके कारण नित्यमुक्त जीवकी अनादि-बहिर्मुखता एवं उन्मुखता—दोनों ही हैं। माया भगवानके पृष्ठदेशस्थिता है। इसलिए भगवानके पृष्ठदेशमें स्थित जीव के साथ मायाका संग होना बहुत ही संभवपर है। इसलिए अधिभूत, अध्यात्म एवं अधिदैव—इनके कर्त्तृत्वसे महाभूतरूप द्रव्य, देवतारूप ज्ञान, इन्द्रियरूप क्रियाके आश्रयस्वरूप अर्थात् उस उस अभिमानके द्वारा मायामुग्ध तटस्थ जीवका बन्धन करते हैं ॥११॥

स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेतैरधोक्षजः ।
स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥१२॥

उन मायाशक्तिमान् अतीन्द्रिय भगवानका तत्व जीवके निकृष्ट उपाधिस्वरूप गुणत्रय द्वारा देखा नहीं जाता। केवल उनके प्रणत भक्त लोग ही उनका तत्व निर्णय कर सकते हैं। वे मेरे एवं सभीके ही ईश्वर हैं ॥१२॥

हरिभक्तकी महिमा

धर्मानशेषानपि यो विहाय भजेदनन्यो हरिपादपद्मम् ।
दत्वा पदं मूर्द्धनि सुधार्मिकानां स एव तद्धाम सुखादुपैति ॥

जो व्यक्ति सभी धर्मोंको छोड़कर अनन्यचित्तसे एकमात्र श्रीहरिके पादपद्मोंकी सेवा करते हैं, वे ही समस्त सुधार्मिक व्यक्तियोंके मस्तक पर पद रखकर सुखसे हरिधाममें गमन करते हैं।

स एव वीरः स हि शास्त्रवेदविद् स एव धन्यः सुकृतः स एव हि ।
स एव लक्ष्म्या स्वयमेव मृग्यते स उत्तमो यो हरिभक्तिमाश्रितः ॥

जिन्होंने हरिभक्तिका आश्रय ग्रहण किया है, वे ही वीर हैं, वे ही सर्वशास्त्रज्ञ हैं, वे ही धन्य हैं, वे ही सुकृतिमान् हैं, वे ही स्वयं लक्ष्मीजी द्वारा अन्वेषण किये जाते हैं एवं वे ही उत्तम पुरुषोंमें गण्य हैं।

तवर्थयन्तेऽखिल-पुरुषार्थास्तमर्दयन्ते त्रिविधाः न तापाः ।
तमाश्रयन्तेऽखिलतत्त्वबोधाः सदा यमानन्दयतीशभक्तिः ॥

भगवद्भक्ति जिन्हें निरन्तर आनन्द प्रदान करती हैं, सभी प्रकारके पुरुषार्थ स्वयं उनकी प्रार्थना करते हैं, त्रिताप उनको सन्ताप प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होते एवं समस्त तत्व ज्ञान उनका ही आश्रय ग्रहण करता है।

(श्रीहरिभक्तिकल्पलतिका, प्रथम स्तबक)

कृष्णभक्ति ही शोकादि-विनाशिनी है

विशुद्ध चिन्मय राज्यमें जो सभी इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, उनमें किसी अचित् पदार्थकी बाधा नहीं है। चिन्मय सद्गुणसमूह वर्त्तमान अचिज्जगतके साथ विचित्रतामें एकरूपता प्राप्त करने पर भी अचित् जगत् चिज्जगतकी प्रतिफलित छाया स्वरूप मात्र है। चिज्जगत के साथ अचिज्जगतकी एकरूपता रहने पर भी वास्तव-वस्तु एवं वस्तुकी प्रतिमा (प्रतिच्छवि) के विचारसे वस्तु एवं छायाकी तरह परस्पर भेदधर्ममें स्थित हैं। यहाँ कालद्वारा परिवर्त्तनशील विषय एवं आनन्दमें रुकावट आदि धर्मोंने छाया-प्रतिम या छायातुल्य देश, काल एवं पात्रमें नाना प्रकारके अभाव जोड़ रखा है। चिन्मय जगत् नित्य है, अचिद्-रहित है, विचित्रतापूर्ण है एवं सभी प्रकारके सद्गुणमण्डित भावमाला द्वारा प्रदीप्त होकर नित्यानन्द प्रदान करता है। अचिज्जगतमें नाना प्रकारकी हेयता (तुच्छता), अनुपादेयता (निकृष्टता), अभाव आदि विषय हमारे प्रयोजनमें विघ्न उपस्थित करते हैं। हमारे प्रतिदिनके जीवनमें हम सभी इन बातोंका अनुभव करते हैं।

'अभाव' नामक समस्याका समाधान ही शोकसे परित्राण पानेका उपाय है। श्रीमद्भागवतका कहना है—हम शोकके हाथों से तभी तक मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक हम 'मैं एवं मेरे'—इस विचार-प्रणालीसे कालाधीनता, अज्ञान-परिचर्या एवं असन्तोष नामक विरुद्ध वृत्तियाँ, जो हमारे स्वतोषण-धर्ममें विघ्नकारी हैं,उनके आनुगत्य करनेके लिए दौड़ पड़ते हैं।

अभाव-राज्यमें पूर्त्ति-कार्य ही वर्त्तमान अनुभूतिमें स्वतोषण या अपनी तृप्ति है। अपर-तोषणके बिना इस जगतमें स्वतोषण प्राप्त करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। हम जिस परिमाणमें अपना त्याग स्वीकार करते हैं, अर्थात् तपस्वी होकर दूसरोंके तोषण कार्योंमें व्रती होते हैं, उसके बदलेमें उसी परिमाणमें पुष्प-फल आदि प्राप्त कर स्वतोषण साधनमें उन्नति प्राप्त करते हैं। किन्तु यह स्व-तोषण खण्डकालके अधीन है, नित्य नहीं।

जब दूसरोंके उपकारके लिए नियुक्त होनेकी प्रणालीको सर्वोत्तम मंगलका आधार समझते हैं, उस समय यदि हम यह समझ सकें कि यह भी एक अनित्य खण्डकालके अन्तर्गत एक क्रिया-विशेष है, ऐसा होनेपर उसी समय ही हममें नित्यानित्य विवेक चिदचिद् विवेक, आनन्द-निरानन्द विवेक, आकर उपस्थित होता है। उसके फलसे परवस्तुके विचारद्वारा वास्तव सत्यका नित्यता, वास्तव-वस्तुकी केवल-चिन्मयता एवं वास्तव-वस्तुकी नित्यानन्दमयता आदि हमारे लक्ष्य वस्तु होते हैं। तब ही हम ब्रह्म-संहिताके पंचम अध्याय

के पहले श्लोकमें उद्दिष्ट पदार्थमें हमारी शोक समस्याकी मीमांसा देख पाते हैं।

हमारी दुर्बलता दूर करनेके लिए हम भगवानके बलदेव-स्वरूपके शरणागत होते हैं। वे बलदेव-प्रकाश-विग्रह महान्त गुरु रूपसे हमारी लघुताको अपनी गुरुतासे परिपूरण करते हैं।

हमारे काव्य एवं साहित्यमें जो अभाव है, उसे परिपूरण करनेके लिए ही चिन्मय परमेश्वर अपने प्रकाश-विशेषका अवतारण कराकर हमें परम-मंगल-प्राप्तिका सुयोग देते हैं एवं हमारे विवेकको नियमित करते हैं। अचिज्जगतके प्रभुसूत्रसे हमारे निजत्व या अपनापनमें जो अहङ्कार वर्त्तमान है, भगवत्-प्रपत्तिको छोड़कर उस अहंकारका प्रशमन करनेका और कोई उपाय नहीं है। जहाँ हमारा सम्बल या मूलधन भगवत्-प्रपत्तिका कुछ अंश है, वहाँ हम अपनी बल-प्राप्तिके लिए श्रीबलदेवके प्रकाश-विग्रहके नाना आकार दर्शन करते हैं। श्रीबलदेव दस शरीर प्रकट कर स्वयंरूप श्रीकृष्ण-विग्रहकी सेवा किया करते हैं। उनके ही दस शरीर दस दिशाओंमें कार्य करनेके लिए ही जो महान्त गुरु एव उनके उपादान-समूह हैं, हम इस गूढ़विषयका अनुसन्धान प्राप्त करते हैं।

जगतमें जो सभी वस्तुएँ भगवत्सेवोपकरण के रूपमें ग्रहण नहीं की जातीं, उन सभी वस्तुओंकी संगत्याग पिपासा हमारे हृदयमें उदय होने पर हम कृष्ण-सेवानुकूल चेष्टाओंमें नियुक्त होते हैं। ऐसी चेष्टाके फलसे हमें अभावोंद्वारा उत्पन्न शोक नहीं होता। वर्त्तमान कालका तात्कालिक शोक नित्य भगवान एवं भागवत (भक्त) की सेवाके प्रभावसे ही कम होता है या क्षीण होता है। हरि-सेवोन्मुखता उदित होनेपर वह स्वतोषण एवं अपर-तोषण की वासनासे क्रमशःहमारी मुक्ति प्राप्त कराकर परतोषण या हरिभक्तिमें हमारा अवस्थान कराती है। उसी समय ही हम श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी प्रचुर कृपा प्राप्त करनेके लिए उनके निष्कपट अनुगतजनोंके सेवानुशीलन द्वारा महाजन-लिखित श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीमद्भागवत आदिके श्रवण एवं कीर्त्तनादि विचारपरायण होते हैं। इस अनुष्ठान द्वारा हमारे आत्म-धर्म भगवद्भक्तिका विकास होता है। गौण या आनुषंगिक रूपसे जागतिक अभावसे उत्पन्न शोकसे हमारा परित्राण होता है।

कृष्णसेवा विमुखताका ही दूसरा नाम काम है। पूर्णवस्तुकी सेवा करना ही अपूर्ण अंश आत्माका एकमात्र कर्त्तव्य है। सेवा दो प्रकारसे की जाती है—(१) अनुकूल सेवासे कृष्णप्रेम, एवं (२) प्रतिकूल सेवा-चेष्टासे सेवा-विरोधी अपना इन्द्रिय-तर्पण। सेवाकी प्रतिकूल चेष्टा हमें छः प्रकारके क्लेशोंमें डूबाती है। इन क्लेशोंके हाथसे मुक्ति प्राप्त करना हो, तो निर्मत्सर कृष्णसेवककी सेवा ही हमारे लिए एकमात्र औषधि है। इस जगत्में कृष्णसेवक ही हमें कृष्णप्रेम-विरोधी-कामके हाथोंसे परित्राण करते हैं। अप्राकृत कामदेव श्रीकृष्ण की सेवोन्मुखताके अभावसे ही हमारे अन्दर

प्राकृत काम-प्रवृत्ति है। काममें आंशिक बाधा या क्षुन्नता ही क्रोध होनेका कारण है। काम को वर्त्तमान कालमें व्याधिग्रस्त अपनापनके इन्द्रिय-तोषणका जनक जानना होगा। व्याधि विमुक्त अपनापनमें अप्राकृत कामदेवकी इन्द्रियतृप्ति ही एकमात्र वृत्ति है। कृष्ण-प्रपत्ति या कृष्णसेवा ही हमारे प्राकृत कामबीजका विनाशकारी एवं एकमात्र प्रतिरोधक है।

रूप, रस, गन्ध, शब्द एवं स्पर्श प्राप्त करनेकी इच्छासे हमारी अन्तःप्रार्थी (afferent) पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ जनकका कार्य करती हैं। जड़ेन्द्रिय-तोषण-पिपासाके गर्भमें ज्ञानेन्द्रिय-पञ्चक रूपी जनकके औरस से प्रकृतिगत नश्वर व्यवहारका उदय होता है। इस नश्वर व्यवहार-सिद्धिके लिए बहिर्गामी (efferent) कर्मेन्द्रिय पञ्चक हैं। जनकके रूपमें क्रियाके गर्भमें अल्पकाल स्थायी आनन्द नामक नश्वर सन्तानके वे प्रार्थी होते हैं। जनक-जननी सूत्र में वासना नियुक्त होनेपर वात्सल्य रसका उदय होता है। उसी वात्सल्यके विचारसे कृष्ण-तनयकी आविर्भाव-विमुखताके कारण शोक-वंश परम्पराकी वृद्धि होती है। जनक-जातीय एवं जननी-जातीया सन्तान-सन्तति वात्सल्य अनुष्ठानद्वारा जड़जगतमें वृद्धि प्राप्त करते हैं।

जीवकी कृष्ण-सेवा रहित पतनका उल्लेख करते हुए हम मधुर-रस-विकार, वात्सल्यरस-विकार एवं विश्रम्भ-सख्यार्द्ध-रस-विकारसे अधःपतन वर्णन कर ऐहिक परोपकारके चिन्तास्रोतसे उत्पन्न धर्म विचारकी कथा कहा जा रहा है। वर्त्तमानकालमें हम गौरव-सख्य विचारसे जनक-जननी-सन्तान-सन्तति आदि प्राप्त किये हैं। इसलिए एकके बहुत्व या विश्लेषण-विचारसे अवतीर्ण बहुत्वमें जो बन्धुत्वकी आवश्यकता है, उस गौरवमें शिथिलता होनेपर जो विषमता उपस्थित होती है, उसमें निकृष्टता, हेयता, गुणजड़ता, काल-क्षोभ्यता आदि नाना प्रकारके निरानन्द, अज्ञान एवं तात्कालिकताके दोष आ जाते हैं।

जो व्यक्ति जीवोंकी बद्ध अवस्थामें नश्वर परिवर्त्तनशील विश्वकी अनुभूतिके प्रति अधिक आदर दिखलाते हैं, वे लोग कृष्णभजन से कुछ स्वतन्त्रता ग्रहण कर केवल मर्यादा विचारके दास्यरसमूलक मधुर, वत्सल एवं गौरव-बन्धुत्व मात्र वास्तव वस्तुमें वर्त्तमान हैं, ऐसा समझकर कृष्ण भजनके पारतम्य निर्देश करनेमें अपनी उदासीनता प्रकाश करते हैं। तब ही हम जैसे कृष्ण विमुख धृष्ट जीव गौरवतासे पूजित चतुर्भुजविशिष्ट विष्णु-तत्वका आवाहन करते हैं एवं विष्णु ही एकमात्र मर्यादा-पथके सेव्य एवं सर्वशक्तिमान् हैं, आदि विचारमें प्रवेश करते हैं।

जड़ जगतमें विधि एवं रागका परस्पर तात्पर्य न समझनेके कारण ही हम विष्णुको परम गौरवयुक्त बन्धु समझकर अपनेको हीन समझकर जड़ जगतके प्रतिवादी (आसामी) मात्र समझते हैं।

वर्त्तमान समयमें हम नाना प्रकारके चिन्तायुक्त व्यक्तियोंके विभिन्न प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयास करते हैं। उसमें जागतिक

नीतियाँ हमारे निकट दार्शनिक तथ्य रूपसे विक्रम प्रकाश करती हैं। हम तब कहा करते हैं कि नाभिदेशके निम्नांशकी क्रियाएँ चिज्जगत्‌में नहीं हैं। बहिर्गामी इन्द्रिय मलसमूहका जब चिज्जगत्‌में अधिष्ठान नहीं है, तब नाभि-देशके निम्नांगमें हरिमन्दिर स्थापन करनेकी संभावना नहीं है, ऐसा विचार करते हैं। जागतिक अपेक्षायुक्त विचारमें इसकी युक्तियुक्तता है। चिज्जगत्‌की परम निर्मल अवस्थाको विकृत कर खण्डित कालाधीन राज्यके आदर्श द्वारा दर्शन करनेपर या मुख्य विचारको गुणजात राज्यमें कलुषित करनके अधिकार प्राप्त करनेकी आशामें व्यस्त होनेपर सर्वशक्तिमान् पुरुषोत्तमको कान्त रूपसे, पुत्र रूपसे, प्रभु रूपसे सब प्रकारसे सबक्षण पाल्य बन्धु रूपसे ग्रहण करनेके बदले उनके निकटसे उपदेशात्मक सेवा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे अर्जुनकी तरह उपदेश ग्रहणकर्त्ताका विचार ग्रहण कर भगवानसे अपनी सेवा करा लेते हैं अर्थात् हम भगवान्‌की सेवा करनके बदले भगवानकी सेवा ग्रहण करते हैं। इसके द्वारा कृष्णप्रेमका उद्देश्य बहुत कुछ विपदाग्रस्त होने लगता है।

विष्णुको परतत्त्व समझकर कृष्णको अवतार रूपसे विचार करने पर हमारे कृष्णभजनमें दरिद्रता उपस्थित होती है। कृष्णकी सब प्रकारसे अनुकूल अनुशीलनके अभावमें कृष्णेतर वस्तुको पाल्य समझनेसे उसकी प्रभुता आकर हमारी नित्य कृष्णसेवा प्रवृत्तिको संकटमें डाल देती है। तब हम विष्णुको सखा स्वरूप समझकर कभी कभी उनके द्वारा हमारे मनोरथको चलानेके लिए नीति-प्रतिष्ठानको उज्ज्वल करनेकी चेष्टा करते हैं, क्रमशः विष्णुके निकटसे नाना प्रकारकी उत्कट वासना करते हुए सेवा प्रार्थना करते हैं। एवं विष्णु को ही हमारे प्रयोजन के एकमात्र आयोजनकर्त्ता समझते हैं। इस आयोजन कार्यकी सुविधाके लिए हम भगवत्ता में पितृत्व एवं मातृत्व भाव आरोपण करनेकी वासनासे व्यस्त होते हैं। इस जगतमें हमारे जन्मके प्रारम्भके पहलेसे ही जनक-जननी आदि हमारे सेवा-कार्य आदिमें नियुक्त रहते हैं। तब हमारी प्राचीन वासनाके फलसे हम उनके निकटसे असमर्थावस्थामें भी सेवा ले लेते हैं। हमारे प्रति जनक-जननीका सेवा विधान ही इस नश्वर जगतमें प्रदत्त ऋणको चुकाने के लिए दूसरोंका तोषण (altruism या परोपकारिता) प्रवृत्तिका फल है अर्थात् अग्रिम प्रदत्त अर्थका बैंकसे पुनः प्राप्त करनेका समय ही पिता-माताके निकटसे सेवा-प्राप्त करनेका समय है।

इस प्रकार हम भी पुनः सन्तानोंके जनक-जननी सम्बन्धसे हमारे पुत्र-कन्यादिकी सेवा किया करते हैं। क्योंकि हमने पहले उनके निकटसे वह सेवा प्राप्त की है, इसलिए ही उनके प्रतिदानका काल इस अवस्थामें उपस्थित होता है। उस समय हम दूसरोंको प्राप्त करनेकी प्रवृत्तिद्वारा उत्तेजित होकर परतोषण या कृष्णेन्द्रिय-तोषण भूल जायेंगे, उस समय अपस्वार्थपरता हमें ग्रास करेगी। इसका उदाहरण हमारे जीवनमें हम सब समय उपलब्धि कर रहे हैं। वर्त्तमान समयमें स्व-

तोषणके अन्तर्गत हमारे पुत्र-पौत्रादि, पुत्र-पौत्रके सेवक लोग, समाज एवं अचिज्जगत्के सारे मनुष्य-समाजके भृत्य लोग हमारा केवल सेवा-विधान करते हैं।

सारा चेतन जगत् अचेतन जगत्का भोक्ता है, ऐसा अभिमान प्रबल होनेपर ही हम प्रभु-रसमें हमारे समाजको स्थापित कर समाजके बाहर चेतन और अचेतन, प्राणी एवं जड़वस्तुओंको हमारी अपनी इन्द्रियोंके तोषण में नियुक्त करते हैं। जब वे सभी चेतन और अचेतन हमारे सामाजिक शुभ-विधानसे पराङ्मुख होकर व्यक्तिविशेष या श्रेणीविशेष के प्रति लाल आँखें दिखाते हैं या उनके प्रति हिंसा प्रदर्शन करते हैं, उस समय हम अपने क्षुद्र-दर्शन द्वारा जगत्में अशान्ति, तुच्छता, विद्रोह आदि अमंगल उपलब्धि करते हैं। यहीं शान्त-रसाश्रित मौन-नामक तपस्याका उदय होता है। इस मौनके भंग होने पर पुनः अशान्तिकी उपलब्धि होती है।

हम जब तक अशांतिका स्वरूप उपलब्धि नहीं करेंगे, तब तक हमारी प्रस्तावित शान्ति का विग्रह अशान्ति नामक विग्रहको सफल बनायेगा। श्रीविग्रह (personality of the absolute godhead in analytic and synthetic manifestations) स्वरूपकी अनुपलब्धिके कारण ही हमारी विग्रहेतरकी अनुभूति या जड़ निर्विशेष विचार है। जड़-निर्विशेषका प्रकार-भेद स्वरूप चिन्निर्विशेष या चिन्मात्र विचार केवलाद्वैतवादी (pantheist) को विग्रह-रहित चिन्तामें निमग्न कराता है।

विग्रह (entity) कालातीत एवं कालाधीन है। विग्रह (entity) प्राकृत (पार्थिव) एवं अप्राकृत है। अप्राकृत विग्रह में आस्था कम हो जानेसे ही प्राकृत विग्रहसमूह हमारे चिन्तास्रोतमें विग्रह (puzzle) उत्पन्न कराता है।

उसी समय एकायन विचार बहुतसे शाखाओंमें विभाजित होकर वेदरूपसे knowledge-Transcendental and mundane (अप्राकृत एवं प्राकृत) जड़जगतके गृह्य एवं श्रौत—दोनों सूत्रोंद्वारा ओतप्रोत रूपसे हमारा वक्ष (field) उत्पन्न करता है। इसलिए उत्क्रान्त (अतिक्रान्त) पद्धति या आरोहवाद (ascending process) में खण्ड जागतिक चिन्तास्रोत द्वारा पूर्णवस्तुको अधीन करानेकी जो चेष्टा है, वह हमारे उद्देश्यपर आघात करता है। इसलिए जो व्यक्ति सब समय अनुकूल भावसे अप्राकृत कृष्णकी उपासना करते हैं, उनके वाक्योंमें हमारे सौभाग्यसे पुनः नित्या श्रद्धा स्थापित होती है। कार्ष्णके अर्थात् बलदेव प्रभु एवं तदनुगत व्यक्तियोंकी शक्ति-सहायताके बिना हमारा कृत्रिम (pedantic) बल—जो अहङ्कार नामसे परिचित है, उसकी अकर्मण्यता अनुभूतिका विषय नहीं होती। आध्यक्षिक या जड़ीय अहंकारकी अकर्मण्यताका अनुभव होनेपर हम दुःसंगका परित्यागकर जागतिक विचारका आनन्द, जागतिक विचारका उत्तम ज्ञान, जागतिक विचारका अधिक-काल अवस्थानकी चेष्टा आदि सभी कुछको सच्चिदानन्द विचारकी तुलनामें

अनावश्यक जान सकेंगे। इस प्रकारकी कृष्ण दीक्षामें दीक्षित होने पर ही परम मंगल होता है। 'दीक्षा' शब्दके द्वारा दिव्यज्ञानको कहा जाता है। दिव्यज्ञान जागतिक ज्ञानकी ओर नहीं बढ़ता। जागतिक ज्ञान संग्रहकी ओर दौड़नेका विचार विरोध उत्पन्न करता है।

वर्त्तमान समयमें हम 'मैं कौन हूँ ?'— इसका चरम विचार न कर क्षणभंगुर स्थूल शरीरको या परिवर्त्तन होनेवाले मानस या सूक्ष्म शरीरको 'मैं' कहकर धारणा कर 'मैं' को अविवेचनाके राज्यमें नियुक्त करते हैं। 'काम' किस प्रकारकी वस्तु है, कामका चिन्ताकारी कौन है एवं किस लिए काम हमें उन्मत्त कराता है, इन सभी प्रश्नोंकी मीमांसा ही श्रीविग्रहमें भली प्रकारसे कही गयी है।

श्रीविग्रह का दर्शन मंत्रके द्वारा करना होता है। जड़जगतकी चिन्ता या मनन-कार्य से रक्षक शब्दोंको 'मन्त्र' कहा जाता है। अर्थात् जिस समय हम पारमार्थिक वाक्य श्रवण करते हैं, उस समय वे श्रौत वाक्य ही हमारे चित्तरूपी दर्पणमें पतित धूलि-राशिको दूर करते हैं एवं पूर्ण अमृतके आस्वादनमें सब समय हमें नियुक्त करते हैं।

दो बिन्दुओंके बीचमें जो अत्यन्त सूक्ष्म जड़ आकाश वर्त्तमान है, वह साधारण गतिशील पदार्थके छिद्र (दोष) के कारण व्याघातकारक या विघ्नकारी नहीं हो सकता। किन्तु दोष ढूंढनेवाले व्यक्ति इस छिद्रमें या दोषमें गिर पड़ेंगे—इस आशंकासे जड़ निराकारवादके चिन्तास्रोतसे उत्पन्न जो सभी उदाहरण घटाकाश एवं महाकाश शब्दके द्वारा व्यवहार किये जाते हैं, वे सभी कृष्ण-सेवाके लिए बाधास्वरूप मात्र हैं।

श्रीविग्रह या भगवद् अर्चा-मूर्त्ति हमारे इन्द्रियग्राह्य कार्यविशेष नहीं है। जिस मुहूर्त्तमें हम श्रीविग्रहको जड़विग्रह समझकर हम द्रष्टा एवं प्रभु हैं, वे हमारे द्रष्टा नहीं हैं, वे हमारी प्रार्थना को श्रवण करने योग्य नहीं हैं, उनकी सभी इन्द्रियाँ हमारी आत्माके रूप, रस, गन्ध शब्द, स्पर्श आदिका सान्निध्य या निकटता प्राप्त नहीं कर सकतीं, ऐसा विचार करते हैं, तब उसी समय ही श्रीविग्रहमें जड़विग्रहका विरोध आकर हमारे दुर्भाग्यको बढ़ाता है। जिस समय हम यह जानेंगे कि हम श्रीविग्रहके सेवक हैं एवं वे एकमात्र हमारे सेव्य एवं सच्चिदानन्द विग्रह हैं, तब उस समय ही रूप-रसादि अप्राकृत कामदेव श्रीकृष्णके इन्द्रिय तर्पणमें नियुक्त होंगे एवं उनके अनुकूलमें हमारी ऐसी इन्द्रियाँ भी प्रभुता करनेके बदले भगवानकी सेवामें या भजनमें नियुक्त होंगी।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

—:※:—

प्रश्नोत्तर

(दैव–वर्णाश्रम)

(गताङ्क, पृष्ठ ६० से आगे)

१५–त्रिदण्ड-संन्यासका क्या उद्देश्य है ?

"काय, वचन एवं मनको दण्डित या दमन करनेके लिए संन्यासी लोग त्रिदण्ड धारण करते हैं। शंकराचार्यजीकों एकदण्ड-धारण-विधि है।"

—अ० प्र० भा० ५।१४३

१६–वृत्तिगत वर्ण-निर्णयकी सार्थकता है क्या ? वर्णाश्रम धर्मका क्या उद्देश्य है ?

"जन्म, संसर्ग या संग एवं शिक्षासे मनुष्यके स्वभावका उदय होता है। स्वभाव के अनुसार वर्ण नहीं स्वीकार करनेपर जीवन निर्वाह् कार्यमें कोई भी चतुर नहीं हो सकता। स्वभाव बहुत प्रकारका होनेपर भी मूलरूपमें चार प्रकारका है—ईश्वर एवं विद्या जिनके स्वभावगत विषय हैं, वे ब्राह्मण हैं। शौर्य एवं राज्य शासन जिनके स्वभाविक विषय हैं, वे क्षत्रिय हैं। कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य-क्रिया जिनके स्वभावगत कर्म हैं, वे वैश्य हैं और तीन वर्णोंकी सेवामात्र ही जिनका स्वभाव है, वे शूद्र हैं। अपने अपने वर्णधर्ममें एवं अवस्था-क्रमसे आश्रम धर्ममें अवस्थित होकर सुन्दर रूपसे जीवन-निर्वाहके द्वारा विष्णु भगवान्‌की आराधना करते करते मनुष्य की स्वाभाविक उन्नति होती है। विपरीत आचरण करनेपर नैसर्गिक पतन होता है। इसलिए धर्म-जीवन ही मानवोंके सभी प्रकार के उत्कर्षका मूल है।"

—अ० प्र० भा० ८।५८

१७–वर्णाश्रम-विधि-संरक्षण करनेमें भगवदवतारको छोड़कर क्या और कोई समर्थ हो सकते हैं ?

"मेरे (श्रीकृष्णके) आविर्भाव का यही मात्र नियम है—मैं (श्रीकृष्ण) इच्छामय हूँ, मेरी (श्रीकृष्णकी) इच्छा होनेपर मैं (श्रीकृष्ण) अवतीर्ण होता हूँ। जब जब धर्मके लिए संकट एवं अधर्मका प्राबल्य होता है, तब तब मैं (श्रीकृष्ण) स्वेच्छापूर्वक अवतीर्ण होता हूँ। मेरे (श्रीकृष्णके) जगत्-कार्य-निर्वाह सम्बन्धी सभी विधियाँ अनादि हैं, किन्तु कालक्रमसे जब ये सभी विधियाँ किसी अनिश्चित कारणों से विकृत हो जाती हैं, तब काल दोषके कारण अधर्म प्रबल होकर खड़ा होता है। उस दोष का निवारण करनेमें मुझे छोड़कर और कोई भी समर्थ नहीं होता। इसलिए मैं (श्रीकृष्ण) अपनी चिच्छक्तिके साथ प्रपञ्चमें उदित होकर इस धर्म-संकटको दूर करता हूँ। इस भारत भूमिमें ही जो मेरा (श्रीकृष्णका) आविर्भाव

हो, ऐसी बात नहीं, मैं (श्रीकृष्ण) देव-तिर्यगादि समस्त राज्योंमें ही आवश्यकतानुसार इच्छापूर्वक उदित होता हूँ। अतएव म्लेच्छ एवं अन्त्यज लोगोंके राज्य में उदित नहीं होता, ऐसी बात मत सोचो। वे सभी शोच्य व्यक्तिलोग जितने परिमाणमें धर्मको स्वधर्मके रूपमें स्वीकार करते हैं, उसकी ग्लानि होने पर भी उनमें शक्त्यावेश अवतार रूपसे मैं (श्रीकृष्ण) प्रकट होकर उनके धर्मकी रक्षा करता हूँ। किन्तु भारतभूमिमें वर्णाश्रम-धर्म रूपसे साम्बन्धिक स्वधर्म भली प्रकारसे आचरित होता है। इसलिए ही इस देशवासी मेरी (श्रीकृष्णकी) सभी प्रजाओंके धर्मका संस्थापन करनेके लिए मैं (श्रीकृष्ण) अधिकतर यत्न करता हूँ। इसलिए युगावतार अंशावतार आदि जितने सुन्दर अवतार हैं, वे भारतभूमिमें ही देखे जाते है। जहाँ वर्णाश्रम-धर्म नहीं है, वहाँ निष्काम कर्मयोग एवं उसके द्वारा साध्य ज्ञान योग एवं चरम फलरूप भक्तियोग भली प्रकार से आचरित नहीं होता। तब जो अन्त्यज व्यक्तियोंमें कुछ परिमाणमें, भक्ति जो उदित होते देखी जाती है, वह भक्तकृपा जनित आकस्मिकी जानना होगा।"

—गी० वि० भा० ४।७

१८-ब्राह्मणत्व एवं वैष्णवत्वमें क्या तारतम्य है ?

"ब्राह्मणत्व ही वैष्णवत्वका अधिकार या सोपान है एवं वैष्णवत्व ही ब्राह्मणत्वका फल है।"

—'ब्राह्मण एवं वैष्णव', स० तो० ३।१

१९-वर्णाश्रमधर्ममें आसक्त रहनेपर क्या भजनोन्नति होती है ?

"बहुतसे व्यक्ति, जो वर्णाश्रमी हैं, वे वर्णधर्मकी निष्ठामें दृढ़ आसक्त होकर भाव एवं प्रेमादि प्राप्त करनेमें बहुत ही उदासीन रहते हैं। उससे उनकी क्रमोन्नतिमें यथेष्ट विघ्न या आघात पहुँचता है।"

—चै० शि० ३।१

२०-ब्राह्मण एवं वैष्णवमें परस्पर कैसा व्यवहार उचित है ?

"ब्राह्मणत्वकी अवज्ञा कर कोई वैष्णव नहीं हो सकते एवं वैष्णवत्वकी अवज्ञा कर ब्राह्मण कदापि चरितार्थ नहीं हो सकते।"

—'ब्राह्मणत्व एवं वैष्णवत्व', स०तो०४।६

२१-ब्राह्मण कितने प्रकारके हैं ? वैष्णवत्व प्राप्त करनेका पूर्ववर्त्ती सोपान क्या है ?

"ब्राह्मण दो प्रकारके हैं—(१) व्यवहारिक और (२) पारमार्थिक। व्यवहारिक ब्राह्मणत्व केवल जातिके कारण है एवं पारमार्थिक ब्राह्मणत्व गुणके विचार है। × × × पारमार्थिक ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त करने पर वैष्णवत्व पाया नहीं जा सकता।"

—'ब्राह्मणत्व और वैष्णवत्व', स० तो० ५।६

२२-स्वभावसिद्ध एवं जातिसिद्ध ब्राह्मण के लिए किस प्रकारकी मर्यादा आवश्यक है ?

"ब्राह्मण दो प्रकारके हैं—स्वभावसिद्ध ब्राह्मण एवं केवल जातिसिद्ध ब्राह्मण। स्वभावसिद्ध ब्राह्मण प्रायः ही वैष्णव हैं। इसलिए उनका सम्मान सभी लोगों द्वारा माननीय है। जातिसिद्ध ब्राह्मणोंका व्यवहारिक सम्मान है।"

—जै० ध० ६ठा अ०

२३-सामाजिक, अध्यात्मिक एवं पारमार्थिक अमंगलसमूह कब दूर होनेकी संभावना है?

"वर्णाश्रम धर्म जब तक संस्कृत (सुधार प्राप्त कर) अपनी स्वाभाविक अवस्था प्राप्त न करे, तब तक सामीजिक, आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक अमंगलसमूह हमें जर्जरित एवं पीड़ित करेंगे। समस्त मंगलोंके आश्रय स्वरूप भगवान् ही वह मंगल विधान करेंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।"

—'मनुष्य सम्बन्ध एवं वैष्णव-धर्म', स० तो० २।७

२४-केवल जातिके ही कारण किसी व्यक्तिको ब्राह्मण कहना क्या शास्त्र-सम्मत है?

"जन्मके कारण कोई भी व्यक्ति वास्तविक ब्राह्मण या शूद्र नहीं होता। केवल व्यवहारिक संग मात्र प्राप्त होता है। दूसरी ओर तत्वज्ञान, शम आदि गुणविहीन विप्र सन्तानोंको उनके गुण-कर्मानुसार 'क्षत्रिय', 'वैश्य' या 'शूद्र' कहा जा सकता है, यह बात मनु ने भी स्पष्ट स्वीकार की है।"

त० सू० ४६वाँ सूत्र

२५-वर्णाश्रम विधि-निषेध या किसी प्रकारकी ऊँची-नीची अवस्थान्तरके कारण क्या वैष्णवके हरिभजनमें कोई हानि-वृद्धि होती है?

"श्रीवैष्णव चारों वर्णों एवं चारों आश्रमोंके निकट अपनी प्रतिष्ठा स्थापन करने के लिए व्यस्त नहीं हैं। उनकी क्रिया वर्णविधिको अतिक्रम कर गई या आश्रम-निषेधको नहीं मान पायी, इसलिए वे किसीके निकट संकुचित नहीं हैं। क्योंकि भगवद्भक्ति-वृद्धिका एकमात्र उद्देश्य ही उनके क्रिया-समूह में वर्त्तमान है। श्रीवैष्णव ब्राह्मण ही हों या म्लेच्छ-चण्डाल ही हों, एक ही बात है। गृहस्थ ही हों या भिक्षु ही क्यों न हों, उनके लिए गौरव या अगौरव नहीं है। भगवद्-भक्तिके लिए श्रीवैष्णव नरक प्राप्त करें या स्वर्ग-प्राप्त करें, एक ही बात है।'

—'श्रीवैष्णवोंका वर्णाश्रम' स० तो० ११।१

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

★◘★

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-सन्दर्भ—३०)

इसके पश्चात् सब प्रकारके साधनोंसे इस अकिञ्चना भक्तिकी श्रेष्ठता तथा अधिकारी विशेषमें उसकी व्यवस्था दिखलानेके लिए दूसरी प्रक्रियाका अवलम्बन किया जारहा है। पहले परम तत्त्व श्रीकृष्णके प्रति विमुखता दूर करनेके लिए जिस किसी प्रकारसे केवल भगवद्साम्मुख्य ही जीवोंके परम कर्त्तव्यके रूपमें पाया जाता है। वह साम्मुख्य तीन प्रकारका है—निर्विशेष स्वरूप उनके ब्रह्म नामक आविर्भावका ज्ञान, सविशेषस्वरूप उनके भगवद्स्वरूपके आविर्भावकी भक्ति एवं दोनोंका द्वारस्वरूप कर्मापण।

पुरुषोंकी योग्यताके अनुसार इन तीन प्रकारकी व्यवस्थाके लिए साधारण रूपसे मनुष्योंके लिए ज्ञान, कर्म एवं भक्ति ही उपायस्वरूप हैं। दूसरी दूसरी प्रक्रियाएँ उपाय नहीं हैं। ये तीनों ही योग कहे जाते हैं।

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगश्च कामिनाम्॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥
(भा० ११।२०।७-८)

'योग' कहनेसे उपायको जानना होगा। मत् कर्त्तृक अर्थात् वेदकारण भगवानुकर्त्तृक 'श्रेयोविधान' इस पदके 'श्रेयः' शब्दद्वारा क्रमशः मुक्ति, त्रिवर्ग एवं प्रेमको जानना होगा अर्थात् ज्ञानद्वारा मुक्ति, कर्मद्वारा धर्म-अर्थ-काम रूप त्रिवर्ग एवं भक्तिद्वारा प्रेमरूप श्रेयः पदार्थ पाया जाता है। इसकेद्वारा भक्तिका कर्मत्व भी खण्डन किया गया है। मनुष्योंमें अधिकारी भेद का कारण दो श्लोकोंमें गया है—

जो व्यक्ति निर्वेद प्राप्त एवं कर्मसमूहके संन्यास (त्याग) शील हैं, उनके लिए ज्ञानयोग, कर्मादि विषयमें अनिर्विण्ण या आसक्त चित्तकामी व्यक्तियोंके लिए कर्मयोग एवं जो हठात् बिना किसी कारणसे मेरी कथामें श्रद्धा प्राप्त किये हैं तथा निर्वेद प्राप्त या अत्यन्त आसक्त भी नहीं हैं, उनके लिए भक्तियोग सिद्धि प्रदान करता है।

जीवोंमें जो निर्विण्ण अर्थात् ऐहिक एवं पारत्रिक विषय प्रतिष्ठासे उत्पन्न सुखमें विरक्तचित्त हैं, अतएव उसके साधनस्वरूप लौकिक एवं वैदिक कर्मसमूहके त्यागी, जो मुक्तिके लिए दृढ़तर कामनायुक्त हैं, उनके लिए ज्ञानयोग ही सिद्धि प्रदान करता है। जो व्यक्तिकामी (सुखानुरागी) हैं, उनके लिए कर्मयोग ही कहा गया है।

"वे लोग देवमायाको भी जान सकते हैं

एवं अतिक्रम कर सकते हैं।" आदि वाक्यों द्वारा भक्तियोगके अधिकार-विषय कर्मयोगादि की तरह जाति आदि नियमोंका अतिक्रम करनेके कारण केवल श्रद्धा ही हेतुरूपसे ज्ञात होनेके कारण 'यदृच्छा क्रमसे' यह पद प्रयोग किया गया है। यदृच्छाक्रमसे अर्थात् परम स्वतन्त्र भगवद्भक्तका संग एवं उनकी कृपा द्वारा उत्पन्न किसी प्रकारकी अज्ञात सुकृतिका उदय कारण है। जो "श्रवणेच्छु एवं श्रद्धाशील हैं", इत्यादि वचनोंसे यही बात कही गई है।

इसके पश्चात् दूसरे दो श्लोकों द्वारा स्वयं पहले कहे गये पद्यकी व्याख्या कर रहे हैं—

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्ण सर्वकर्मसु ।
वेददुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः॥
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमानश्च तान् कामान् दुखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥
(भा० ११।२०।२७-२८)

जो व्यक्ति मेरी कथामें जातश्रद्ध एवं सभी कर्मोंमें निर्वेद प्राप्तकर कामसमूहको दुःखात्मक रूपसे जान पाये हैं, तथापि परित्याग करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे उसके पश्चात् उन सभी कामनाओंका भोग एवं दुःखोदर्क रूपसे (परिणाममें दुःखजनक रूपसे) उनकी निन्दा करते हुए प्रीत, श्रद्धालु एवं दृढनिश्चय होकर मेरा भजन करेंगे। 'तदनन्तर' अर्थात् 'अवगत हुए हैं' आदि क्रमसे पूर्वव्याख्याता 'अनासक्त या विरक्त नहीं हैं' ऐसी लक्षणयुक्त अवस्थासे आरम्भ कर ही 'मेरा भजन करेंगे' अर्थात् मेरी अनन्यभक्तिके अधिकारी होते हैं, ऐसा अर्थ जानना होगा। परन्तु ज्ञानमार्गकी तरह भली प्रकारसे वैराग्य दशामें ही अधिकार होगा, ऐसा अर्थ नहीं है। क्योंकि भक्ति स्वयं ही सर्वशक्तिमयी होनेके कारण दूसरोंकी अपेक्षा नहीं करतीं। अतएव कहा गया है—

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥
(भा० ११।२०।३१)

अर्थात् मेरी भक्तियुक्त तद्गतचित्त व्यक्तियोंके लिए ज्ञान एवं वैराग्य प्रायः ही मंगलजनक नहीं होते।

इसके पश्चात् कहा गया है—

यत् कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितैरपि ॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंञ्चित् यदि वांछति ॥
(भा० ११।२०।३२-३३)

अतएव मद्भक्तियुक्त योगीके लिए ज्ञान-वैराग्यादिकी अपेक्षा नहीं है। क्योंकि कर्म, ज्ञान, वैराग्य, तपस्या, दान, धर्म एवं दूसरे दूसरे श्रेयस्कर कर्मों द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है, मेरे भक्त मेरे भक्तियोगद्वारा अनायास ही वह सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

यहाँ कर्मविषयक विरक्तिके लिए किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं है। क्योंकि भक्ति ही सर्वोत्तमा है—ऐसा विश्वास होने पर कर्ममें विरक्ति अपने आप ही हो जाती है। अतएव यहाँ 'निर्विण्ण' यह पद अनुवादमात्र है। अतएव श्रद्धाके बिना बाहरी एवं भीतरी

प्रवृत्ति सर्वथा असंभव है। इसलिए ज्ञान-कर्म आदिके सम्बन्धमें भी श्रद्धाकी अपेक्षा रहनेपर भी इस भक्ति-सम्बन्धमें श्रद्धामात्र ही कारण-स्वरूप कहकर उसे विशेष रूपसे स्वीकार किया गया है। यहाँ भी ज्ञानकर्मकी तरह केवल सम्यक् प्रवृत्तिके लिए ही श्रद्धाकी अपेक्षा है, जानना होगा। क्योंकि बिना श्रद्धा के ऐकान्तिकी भक्ति उस प्रकारसे उत्पन्न नहीं होती एवं कभी कुछ मात्रामें ऐसा होने पर भी वह विनष्ट हो जाती है। अतएव "निर्विन्न या अत्यन्त आसक्त भी नहीं हैं"—इस वाक्य के पश्चात् भी "अथवा मेरी कथाके श्रवणादि में" आदि वाक्योंद्वारा श्रद्धाके उदयके पश्चात् ही कर्मत्याग कहा गया है। केवलाभक्ति श्रद्धाके बिना भी सिद्ध होती है। क्योंकि कहा गया है—"हे भृगुवर ! श्रद्धा या हेलासे (खिलवाड़से या अनवधानता पूर्वक) भी यदि एकबार मात्र कृष्णनामका उच्चारण हो, तो ऐसा होनेपर वे कृष्णनाम मनुष्यमात्रका उद्धार कर देते हैं।" और भी कहा गया है कि "साधुजनोंका उत्तम संग प्राप्त होनेपर मेरे वीर्य के प्रकाशक कथासमूहका उदय होता है, जो हृदय एवं कानोंके लिए सुखदायक है। इसलिए उन कथाके सेवनसे शीघ्र ही अपवर्ग (मुक्ति) के मार्ग स्वरूप मेरे प्रति क्रमशः श्रद्धा रति एवं भक्तिका उदय होता है" आदि श्लोकों में श्रद्धाके पहले भी भक्तिका फलदातृत्व सुना गया है। परन्तु "अजामिल मृत्यु-यन्त्रणासे अस्थिर होकर पुत्र-नामोच्चरणके छलसे गौण रूपसे हरिनाम ग्रहण कर भी वैकुण्ठ लोकको प्राप्त हुए थे। अतएव श्रद्धाके साथ जो व्यक्ति हरिनाम उच्चारण करते हैं उनके सम्बन्धमें और क्या कहना है ?" आदि वाक्यों द्वारा श्रद्धाके कारण भक्तिके फलदान विषयमें सुष्ठुत्व ही सुना जाता है।

उक्त श्रद्धा शास्त्रीय अभिधेय वस्तुके अवधारणका ही अंग स्वरूप है। क्योंकि अभिधेय-वस्तु विषय सम्बन्धी विश्वासका नाम ही श्रद्धा है, अतएव वह अनुष्ठानका अंग नहीं है। दाहादि कार्य जिस प्रकार आगका स्वाभाविक धर्म है, उसमें किसी प्रकारकी विधिकी अपेक्षा नहीं है, उसी प्रकार भक्तिका भी अपने फलदानमें किसी प्रकारकी विधिकी अपेक्षा नहीं है। क्योंकि भगवद्विषयक श्रवण-कीर्त्तन आदिमें स्वरूपतः वैसी शक्ति वर्त्तमान है। अतएव भक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती एवं इसलिए "श्रद्धा या हेलाके साथ" आदि कथनद्वारा कहीं कहीं मूढ़ व्यक्तियोंकी भी सिद्धि हुआ करती है। हेला यद्यपि अपराधस्वरूप है, किन्तु अबुद्धिपूर्वक किये जाने पर एवं पुरुषोंका दौरात्म्य (दुर्बुद्धिता) न रहनेपर भक्तिद्वारा फलोत्पादनमें बाधा नहीं होती, यह पहले ही कह गया है। किन्तु जो व्यक्ति ज्ञानबलसे कुपाण्डित्ययुक्त हैं, उनकी बुद्धिपूर्वक की गई हेला दौरात्म्यके कारण भक्तिद्वारा बाधा प्राप्त होती है। गीली लकड़ीमें बाधाप्राप्त आगकी शक्तिकी तरह मात्सर्यके साथ नाम-ग्रहणकारी वेण नामक व्यक्तिमें वस्तुशक्ति बाधा प्राप्त होते देखी जाती है।

'भक्तद्वारा श्रद्धाके साथ किये हुए

जलमात्र भी मेरा प्रिय होता है, परन्तु अभक्त का दिया हुआ द्रव्य मेरे सन्तोष-विधानमें समर्थ नहीं होता'—इस श्लोकमें श्रद्धा एवं भक्ति शब्दसे आदर ही कहा गया है। वह आदर भगवत् सन्तोषरूप फलविशेषकी उत्पत्ति के विषयमें विघ्नकारी अनादररूप अपराधका खण्डनकारी जानना होगा।

अतएव कर्मविषयमें अर्थसम्पन्नता, सामर्थ्य एवं पाण्डित्य जिस प्रकार केवलमात्र अधिकारी पुरुषका विशेषणस्वरूप है, परन्तु कर्मांगस्वरूप नहीं है, उसी प्रकार यहाँ भी श्रद्धा भक्तिविषयमें अधिकारी पुरुषका विशेषणमात्र है, परन्तु भक्तिका अंगस्वरूप नहीं है।

अर्थात् ऐसी अवस्थासे आरम्भ कर मेरा भजन करेंगे, इस वाक्यके द्वारा कितने समय तक या किस अवस्था तक भजन करेंगे, ऐसी कोई सीमाका निश्चय नहीं होनेके कारण आत्मारामताकी दशामें भी किसी-किसीकी भक्तिप्रवृत्ति होती है। इसलिए भक्तिका सार्वभौमत्व या सर्वश्रेष्ठत्व बतलाया गया है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्
भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

—★—

पौराणिक उपाख्यान

सुमति-सत्यमति चरित्र

पूर्वकालमें सत्ययुगमें सुमति नामक एक राजा थे। वे चन्द्रवंशमें उत्पन्न, अत्यन्त श्रीसम्पन्न, सातों द्वीपोंके एकच्छत्र सम्राट् एवं परम-धार्मिक थे। वे किसी भी समय सत्यको छोड़कर मिथ्या नहीं बोलते थे एवं अत्यन्त पवित्र थे। वे कुत्ते तकको अतिथि जैसे सम्मान देते थे। वे सर्वदा हरिपूजामें आसक्त थे एवं सर्वदा हरिकथा श्रवण करते थे। वे हरिभक्तोंकी सेवा करते थे। उनमें तनिक भी अहंकार नहीं था एवं सर्वदा पूज्य व्यक्तियोंकी पूजा करते थे। सभीके प्रति इनकी समदृष्टि थी एवं सभी प्राणियोंके हितकार्यमें लगे रहते थे। वे शान्त, कृतज्ञ एवं कीर्तिमान् थे। इनकी सत्यमति नामसे प्रसिद्ध महाभाग्यवती, सर्वलक्षणसम्पन्ना, पतिप्राणा, पतिव्रता भार्या थीं। वे दोनों स्त्री-पुरुष प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करते थे। वे लोग अपने पूर्व-जन्मकी बात जानते थे। वे दोनों सत्कार्यका अनुष्ठान

करते थे तथा प्रतिदिन अन्न-दान एवं जलदान करते थे। उन दोनोंने असंख्य सरोवर, उपवन बगीचे, कुए आदि निर्माण किया था। वह मधुरभाषिनी सती सत्यमति अत्यन्त सन्तोषके साथ पवित्रतासे विष्णु-गृहमें नृत्य करती थीं एवं वे महाभाग्यवान् राजा भी प्रत्येक द्वादशी में बहुतसे मनोहर ध्वजाओंका आरोपण करते थे। इसलिए देवता लोग भी उन नित्य हरिपरायण परम धार्मिक राजा एवं उनकी प्रेयसी सत्यमतिकी सर्वदा स्तुति करते थे। एक समय विभाण्डक मुनि उन त्रिलोक-विश्रुत धार्मिक श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषके दर्शन करने की इच्छासे शिष्योंके साथ वहाँ पधारे। राजा ने विभाण्डक मुनिका आगमन सुनकर पत्नीके साथ उन मुनिश्रेष्ठके पास पहुँचे। उनकी नाना प्रकारसे पूजा एवं स्तव आदि द्वारा आतिथ्य-सत्कार करनेके पश्चात् उन्हें ऊँचे आसनमें बैठाकर स्वयं नीचे बैठकर हाथ जोड़ते हुए उनसे राजा सुमति इस प्रकार कहने लगे—"हे भगवन्! आपके आगमनसे मैं कृतार्थ हुआ। पण्डितोंका कहना है कि सन्तोंका आगमन अत्यन्त सुखजनक है तथा जहाँ महत् व्यक्तिका प्रेम हो, वहीं पर तेज, कीर्त्ति, धन एवं पुत्र आदि सम्पत्तिका अवस्थान रहता है। जिस स्थानमें प्रतिदिन समस्त मंगलकी वृद्धि होती है, साधु लोग उसी स्थानमें अत्यन्त कृपा करते हैं। जो व्यक्ति मस्तकपर महान् व्यक्तियोंका पादजल धारण करता है, वह सभी तीर्थोंमें स्नान करता है एवं पुण्यवान् है। मैं सब कुछ आपके चरणोंमें अर्पण करता हूँ। आप मेरे शासनकर्त्ता हैं, मुझे आज्ञा करें, आपकी क्या सेवा करूँ?"

मुनिश्रेष्ठ विभाण्डक उस राजाको विनयावनत देखकर हाथोंद्वारा उन्हें स्पर्श कर बड़ी प्रसन्नतासे कहने लगे—"हे राजन्! तुमने जो कहा, वह तुम्हारे वंशोचित है। जो लोग विनयी एवं प्रणत हैं, वे परम मंगल प्राप्त करते हैं। हे भूपाल! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे शत्रु सत्पथ अवलम्बन करें। तुम्हारा मंगल हो। तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो। हरिको प्रसन्न करनेवाले बहुत से अनुष्ठान हैं। तुम अभी भी प्रतिदिन किस लिए ध्वजारोपण-कार्य करते हो एवं तुम्हारी धर्मपत्नी प्रतिदिन किसलिए नृत्य करती है?"

राजाने कहा—"हे महात्मन्! हम दोनों का चरित्र बहुत ही आश्चर्यजनक है। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं पहले मातुलि नामक कुपथगामी शूद्र था। प्रतिदिन मैं सबका अनिष्ट करता था एवं धर्मविद्वेषी होकर देवद्रव्यका अपहरण करता था। महापातकी होनेके कारण मेरे अर्थ एवं सन्तान आदि विनाश प्राप्त हुए। मैं निरन्तर कठोर वाक्य प्रयोग करता था एवं अत्यन्त पापिष्ठ तथा वेश्याके प्रति आसक्त था। कुछ समय तक ऐसा जीवन व्यतीत करते हुए महान् व्यक्तियोंका वाक्य आदर न कर सभी बन्धु-बान्धवोंका परित्याग कर सारी सम्पत्तिका नाश कर मैंने वनमें गमन किया। वहाँ प्रतिदिन मृग-मांस भक्षण करते हुए सत्पथ-विरोधी कार्य करता था तथा अकेले वहीं रहने लगा। एक समय उस वनमें वर्षा के पश्चात् भूख एवं प्यासते कातर होकर एक

जीर्ण विष्णुमन्दिर एवं उसके निकट हंस-चक्रवाक आदि युक्त एक बड़ा सरोवर देख पाया। यह सरोवर वनके नाना प्रकारके पुष्पोंद्वारा आच्छादित था। मैंने जलपान कर वहीं विश्राम किया। मृणालका मूल उत्तोलन कर भूख एवं प्यासका निवारण किया। पश्चात् उसी जीर्ण विष्णु-मन्दिरमें रहने लगा एवं जहाँ जहाँ मन्दिरमें दरारें थीं, वहाँ मैंने जोड़ लगा दिया एवं पत्ते, लकड़ी एवं घास द्वारा सम्यक्-प्रकारसे गृह निर्माण किया। पश्चात् मेरे भाग्याधिक्यके कारण वहाँ की भूमिको गोबर आदि द्वारा साफ कर वहीं पर व्याध-वृत्तिका अवलम्बन कर बहुतसे मृगोंका विनाश कर जीविका निर्वाह करने लगा। इस प्रकार बीस वर्ष बीत गये।

उसके पश्चात् वहाँ विन्ध्यदेशमें उत्पन्न, व्याध-वंशकी कोकिलिनी नामक स्त्री आ पहुँची। वह भूख एवं प्यासमे कातर होकर अपने कार्यकी चिन्ता कर शोकके साथ निर्जन वनमें भ्रमण करते करते ग्रीष्म ताप एवं मानसिक तापसे पीड़ित होकर दैवात् मेरे पास आ गई। उसे देखकर मैंने अत्यन्त घृणा प्रकाश की। पश्चात् मैंने उसे जल, मांस एवं वन्यफल प्रदान किया। उसके विश्राम करने पश्चात् उससे मैंने सभी बातें पूछी। वह भी मुझे सभी बातें बतलाने लगी। वह दांभिक नामक व्याधकी कन्या थी। वह दूसरोंका धन अपहरण करती थी एवं सर्वदा कठोर वाक्य प्रयोग करती थी। उसके स्वामीके मृत्युके पश्चात् बन्धुओंने उसका परित्याग कर दिया एवं वह दुर्गम वनमें मेरे पास आ पहुँची।

हे मुनेः! मैं एवं कोकिलिनी उस जीर्ण विष्णु-मन्दिरमें स्त्री-पुरुष भाव अवलम्बन कर मांस भक्षण करते हुए वहाँ रहने लगे। एक दिन हम दोनों रातमें उस मन्दिरमें मद्यपानसे एवं मांस-भोजनसे आनन्दित होकर, एक दण्ड के अग्रभागमें वस्त्र बांधकर उन्मत्त रूपसे बहुत नृत्य करने लगे। हे मुने! उस समय हम दोनोंकी मृत्यु हो गई। साथ ही साथ भयंकर यमदूत हाथमें पाश लेकर आ पहुँचे एवं भगवान् मधुसूदनने हमारे नृत्यसे प्रसन्न होकर अपने दूतोंको वहाँ भेजा। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय यमदूतों एवं विष्णुदूतों में परस्पर बहुत वाद-विवाद होने लगा। विष्णुदूतोंने कहा— "हे क्रूर दुराचारियों! तुम लोगोंमें थोड़ी भी विचार-बुद्धि नहीं है। ये दोनों स्त्री-पुरुष श्रीहरिके बड़े ही प्यारे हैं तथा इनमें लेशमात्र भी पाप नहीं है। अतएव दोनोंको तुम लोग छोड़ दो। स्वर्ग मर्त्य, पाताल—इन तीनोंमें विवेक ही सम्पद् का मूलकारण एवं विवेकशून्यता ही विपद् का मूलकारण है। जो व्यक्ति निष्पापको पापिष्ठ समझे, उसे पुरुषाधम जानना होगा।" यमदूतोंने कहा—"तुम लोग ठीक ही कह रहे हो। ये दोनों अत्यन्त पापी हैं। पापी लोग दण्डके पात्र हैं। वेदों जो कहा गया है, वही धर्म है एवं उसका विपरीत ही अधर्म है। इन लोगोंने अधर्मका आचरण किया है। इसलिए यमके निकट इन्हें ले जायेंगे।" यह सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर महातेजस्वी उन विष्णु

दूतोंने कहा—"इससे अधिक और क्या कष्ट होगा ? क्योंकि अधर्म धार्मिकोंको स्पर्श कर रहा है। तुम लोगोंने विशेष पाप किया है, इसलिए नरकके अध्यक्ष बने हुए हो। तुम लोग किस लिए आज तक इस सभी पाप कर्मों में उद्योग कर रहे हो ? जो व्यक्ति महापात की हैं, वे अधर्मके नाश होने तक नरकमें रहते हैं। जब तक सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि वर्त्तमान हैं, तब तक तुम लोग नरकमें वास करोगे। जिस के द्वारा पूर्वसञ्चित पापका नाश हो, तुम लोग ऐसी चेष्टा नहीं कर रहे हो, किन्तु क्यों बारम्बार ये सभी पाप-कार्य कर रहे हो ? श्रुतियोंने जो कहा है, वही धर्म है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन दोनोंने जो धर्माचरण किया है, उसे हम यथार्थ रूपसे कह रहे हैं। ये लोग सर्वदा हरिसेवामें रत हैं, इसलिए पापोंसे मुक्त हैं। भगवान श्रीहरिने सर्वप्रकार से इन्हें शुद्ध कर दिया है। इसलिए तुम लोग इनका परित्याग करो। इस स्त्रीने विष्णु-मन्दिरमें नृत्य किया है और इस पुरुषने मृत्यु समयमें ध्वजा दान किया है। इसलिए ये दोनों ही पापोंसे मुक्त हुए हैं। जिस व्यक्तिने मृत्यु समयमें केवल एकबार मात्र भी भगवान का नाम सुन लिया है, वह उन भगवान्‌का परम स्थान प्राप्त करता है। जो व्यक्ति उन भगवान् श्रीहरिकी सेवामें नियुक्त हों, उनका क्या नहीं होता ? मनुष्य महापातकयुक्त या समस्त पापोंसे युक्त क्यों न हो, भगवद्भक्त जिसका दर्शन करे, वह परमपद प्राप्त करता है। वे पापी होनेपर भी उत्तम गति प्राप्त हैं। जो व्यक्ति एक मुहूर्त्त या आधा मुहूर्त्त भी श्रीहरिके मन्दिरमें अवस्थान करे, वह परम स्थान प्राप्त करता है। जो व्यक्ति सर्वदा हरिसेवा परायण है, उसका सब प्रकारसे मंगल हो जाता है। इन दोनोंने श्रीहरिके मन्दिरमें उपलेपन किया है, उसमें झाड़ू लगाया है, टूटे हुए स्थानका निर्माण किया है जल सींचा है एवं श्रीहरि-मन्दिरमें दीपदान किया है। इसलिए इन दोनों महाभाग्यवान् व्यक्तियोंको यमालयमें क्यों ले जाओगे ?" ऐसा कहकर विष्णु दूतोंने पाशको काट दिया एवं हम दोनोंको विमानमें चढ़ाकर, विष्णुके परम पदमें ले आये। हम दोनोंने चक्रधारी देवदेव भगवान् विष्णुके समीप जाकर सहस्र कोटि युग एवं शतकोटि युग तक उनके भवनमें वास करनेके पश्चात् ब्रह्मलोकमें पहुँचे। वहाँ भी उतना ही समय वास कर पश्चात् इन्द्रत्व-पद प्राप्त किया। स्वर्गमें अवश्यंभावी उत्कृष्ट दिव्य भोग प्राप्त कर अभी पृथ्वीमें राजा बना हूँ। यहाँ भी मैंने अपार सम्पत्ति प्राप्त की है। हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने अज्ञानसे ये सभी कार्य कर इन सभी वस्तुओंको प्राप्त किया है। अतएव विश्वनाथ माधवकी भली प्रकारसे आराधना कर परम मंगल प्राप्त करूँगा, यह पूर्ण रूपसे निश्चित है। जो सभी कार्य बिना जाने करने पर भी ऐसा महान् फल प्रदान करे, उनका भली प्रकारसे अनुष्ठान करनेपर क्या नहीं होता ? अर्थात् सब कुछ ही हो सकता है।"

विभाण्डक मुनि ये सभी बातें सुनकर राजाकी प्रशंसा करते हुए तप करनेके लिए वन चले गये।

अतएव देवेश्वर भगवान् विष्णुकी परिचर्या समस्त व्यक्तियोंके लिए कामधेनु स्वरूप है। हरिपूजापरायण व्यक्तियोंको सर्वसमर्थ सनातन श्रीहरि परम मंगल प्रदान करते हैं। भगवान्के श्रीमन्दिरमें ध्वजारोपण कर्म करनेपर ध्वजाका वस्त्र जब तक उड़ता रहे, तब तक सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। यह ध्वजा जब तक विष्णुके मन्दिरमें रहे, तब तक सहस्र युग ध्वजारोपणकारी व्यक्ति हरिका सारूप्य प्राप्त करता है। जो सभी धार्मिक व्यक्ति आरोपित ध्वजाका दर्शन कर उसे प्रणाम करते हैं,वे भी उसी समय ही कोटि महापातकसे मुक्त हो जाते हैं। विष्णु-मन्दिरमें आरोपित ध्वजा अपने वस्त्रको फहराकर आधे निमेषमें ही कर्त्ता के सभी पापोंको भगा देती है। जो व्यक्ति समस्त पापनाशक इस पवित्र उपाख्यानका पाठ करे या श्रवण करे, वह ध्वजारोपणका पुण्यफल प्राप्त करता है।

(बृहन्नारदीय पुराणसे)

—x—

प्रचार-प्रसंग

श्रीश्रीझूलनयात्रा-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २४ श्रावण, ९ अगस्त, बृहस्पतिवारसे लेकर २९ श्रावण, १४ अगस्त, मंगलवार श्रीबलदेव पूर्णिमा तक श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजी का श्रीझूलनयात्रा महोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलमठ—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप तथा शाखा मठ श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, आसाम एवं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है। अन्यान्य शाखा मठोंमें भी यह उत्सव विशेष उत्साहके साथ मनाया गया है। मंगलवार, श्रीबलदेव पूर्णिमाके दिन उपवास, पाठ, कीर्त्तन आदिके द्वारा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके प्रकाश-विग्रह श्रीश्रीबलदेव प्रभुके तत्त्वकी आलोचना की गई।

श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत ४ भाद्र, २१ अगस्त, मंगलवारके दिन समिति के मूल मठ, श्रीधाम नवद्वीप एवं सभी शाखा मठोंमें स्वयं-भगवान् लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका

जन्माष्टमी-व्रत उपवास, भागवत-पाठ, प्रवचन, हरिसंकीर्त्तन एवं प्रदर्शनीके माध्यमसे विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है । मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें यह उत्सव समितिके वर्त्तमान उप-सभापति एवं संयुक्त-सम्पादक परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी विशेष देखरेख तथा अध्यक्षतामें बड़े ही समारोहपूर्वक धूमधामसे मनाया गया है । श्रीकृष्ण-लीला प्रदर्शनी, तुमुल हरिसंकीर्त्तन, संन्यासी महोदयगण एवं ब्रह्मचारी-वृन्दके ओजस्वी भाषण, विभिन्न प्रकारके सुस्वादु षड़्व्यंजनोंसे पूर्ण भोगराग इस महोत्सवके प्रमुख आकर्षण थे । श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें प्रातःकाल मंगलारति, श्रीहरि गुरु-वैष्णव-वन्दना, कीर्त्तन, पाठ आदिके पश्चात् श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण आरम्भ हुआ । श्रीपाद रासबिहारी व्रजवासी, पूज्यपाद निमाईदास बाबाजी महाराज, श्रीपाद रंगनाथ व्रजवासी, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीपाद कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारीजी आदि वक्ताओंने क्रमशः इस पारायणमें योगदान दिया । सभा-मण्डप की बहुत ही सुन्दर सजावटकी गई थी तथा सुन्दर प्रदर्शनी-झाँकी प्रस्तुतकी गई थी । मध्यरात्रि में कीर्त्तन, आरति आदिके पश्चात् उपस्थित सभी सज्जनोंको महाप्रसाद वितरण किया गया । दूसरे दिन नन्दोत्सवके अवसर पर नाना प्रकारके व्यंजनयुक्त सुस्वादु सामग्री श्रीश्रीराधाविनोद-बिहारीजीको अर्पण किया गया । भोग-राग एवं मध्याह्न आरतिके पश्चात् उपस्थित सभी सज्जनोंको विविध प्रकारका सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया । सबेरे एवं शामको विशेष रूपसे श्रीकृष्ण-तत्त्वकी आलोचना की गई ।

श्रीश्रीराधाष्टमी-व्रत-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समितिके मूल-मठ एवं सभी शाखा मठोंमें गत १९ भाद्र, ५ सितम्बर, बुधवारके दिन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिन्न परा-शक्तिरूपा स्वयं भगवती श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीकी आविर्भाव-तिथि बड़े ही आदर एवं समारोहपूर्वक मनायी गई है । श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस प्रातःकाल मंगलारति, श्रीश्रीगुरु-वन्दना, गुर्वष्टक, गुरु-परम्परा, पञ्चतत्त्व आदिके पश्चात् परमाराध्या श्रीमती राधिकाजीकी महिमासूचक एवं उनके चरणोंमें प्रार्थनामूलक पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया । तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराजने श्रीराधा-तत्त्वके बारेमें पाठ किया । दोपहरके पूर्व कुछ कीर्त्तन आदिके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराजने प्रवचन किया । दोपहरके पश्चात् श्रीमती राधिकाजीके अर्चन एवं भोग-रागके पश्चात् उपस्थित श्रद्धालु सज्जनोंको सुस्वादु नाना व्यञ्जनोंसे पूर्ण महाप्रसादका सेवन कराया गया । शामको त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराजने छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण-लीलापर प्रकाश डाला ।

जगद्गुरु श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी गत २४ भाद्र, १० सितम्बर, सोमवारको स्वयं भगवान कलियुग पावनावतारी श्रीश्रीगौरचन्द्रके निजजन एवं श्रीकृष्णलीलाकी अन्यतम मंजरीस्वरूप एवं सप्तम गोस्वामी नामसे विख्यात जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव समितिके मूल मठ, श्रीधाम नवद्वीप एवं सभी शाखा मठोंमें बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें सबेरे मंगलारति, श्रीश्रीगुरुवन्दना, गुर्वष्टक, गुरु-परम्परा, पञ्चतत्त्व आदि कीर्त्तनके पश्चात् श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित विभिन्न पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया। दोपहरको श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीको नानाप्रकारके व्यंजन एवं मिष्टान्न आदिका समर्पण किया गया। भोग-राग एवं मध्याह्न आरतिके पश्चात् उपस्थित सभी सज्जनोंको सुमधुर महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको सन्ध्यारतिके पश्चात् आयोजित विशेष-सभामें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज आदि महोदयोंने जगद्गुरु परमाराध्यतम श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके अतिमर्त्य जीवन-चरित्र, विलक्षण अश्रुतपूर्व शिक्षाएँ, वैशिष्ट्य आदि विषयोंपर बड़ा ही भावपूर्ण प्रकाश डाला।

दूसरे दिन शामको आयोजित विशेष सभामें नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरकी अलौकिक जीवनी, अभूतपूर्व नाम-निष्ठा, विविध शिक्षाएँ आदि विषयोंपर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज, श्रीमद् कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने विशेष रूपसे प्रकाश डाला।

—निजस्व-सम्वाददाता

* ❁ *

श्रीजन्माष्टमीपर दार्शनिक आलोचना

(गताङ्क, पृष्ठ ७२ से आगे)

अद्वैतवादी भगवानके सम्बन्धमें जो कुछ निकृष्ट है। वे ब्रह्मके सगुणावस्थानको ही आलोचना करते हैं, वह अत्यन्त तुच्छ एवं ईश्वर या भगवान् कहा करते हैं। ऐसा कहने

से ईश्वरको जीव-कोटिमें ही रखना हुआ। ब्रह्मकी परिच्छिन्नावस्था या प्रतिबिम्बावस्था को ही वे जीव और ईश्वर कहा करते हैं। परिच्छेदके बृहदंशको ईश्वर एवं क्षुद्रांशको वे जीव कहते हैं। इसलिए देखा जा रहा है कि उनके मतानुसार ईश्वर भी जीव हैं एवं जीव भी जीव हैं। जीव-श्रेणीभुक्त ईश्वरत्वकी उपासना कौन-सा बुद्धिमान् व्यक्ति कर सकता है? आस्तिक समाज ईश्वरत्व या भगवत्ताको जीव-कोटिमें मान लेनेके लिए तैयार नहीं हैं। इसको छोड़कर एक और बात यह है कि इस प्रकार ईश्वरके ईश्वरत्वका चरममें हानि होने के कारण नित्यत्वकी विरोधिता उपस्थित होती है।

शास्त्र, गुरु और भगवान्—इन तीनों तत्त्वोंमें केवलाद्वैतवादी मायावादी कपटताका आश्रय कर विश्वास दिखलानेपर भी वस्तुतः वे लोग उक्त विश्वाससे सम्पूर्णरूपमें दूरमें अवस्थान कर रहे हैं। वृक्षकी किसी शाखामें बैठकर उस शाखाके मूलको यदि काट दिया जाय, तो भूमिमें गिरकर जीवन नाश ही होता है। विचार-क्षेत्रमें शास्त्र गुरु एवं भगवान्‌के ऊपर निर्भर करने जाकर उनका मूल छेदन करते हुए केवलाद्वैतवादी पतित होकर नास्तिक हो रहे हैं। आस्तिक सम्प्रदाय उन लोगोंसे सम्पूर्ण भावसे पृथक् हैं।

अद्वैत मानने जाकर जीव, ब्रह्म एवं विश्वके विचारसे जीव-विश्वमें जो मिथ्यापन का आरोप किया गया है, उससे केवलाद्वैत-वादी का कुण्ठ विरोध ही मूल-व्याधिरूपसे प्रकाश पाता है। मिथ्यापन स्थापन करने जाकर एवं ब्रह्मका निर्गुण, निर्विशेष स्वरूप वर्णन करने जाकर जिस प्रकार वे लोग भ्रममें पतित हुए हैं, उससे उद्धार पानेका उपाय अनवगत (अज्ञानी) आचार्यका आश्रय नहीं, परन्तु कार्ष्णतत्व वसुदेवका पदानुसरण ही एकमात्र उपाय है।

प्रतिबिम्बवादीका कहना है कि प्रतिबिम्ब जिस प्रकार मिथ्या है, उसी प्रकार भेद एवं विशेषादिके कारण सुख-दुःखकी अनुभूति मिथ्या है। क्योंकि जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रके कम्पन एवं जलके कम्पनसे चन्द्रका बहुत्व प्रतिभात होने पर भी चन्द्र निश्चल एवं एक है। इस केवलाद्वैतवादीके उदाहरण द्वारा ब्रह्मैकत्व स्थापन एवं जीव-विश्वका मिथ्यापन स्थापित नहीं होता। क्योंकि उक्त उदाहरणका विश्लेषण करनेपर उसकी सत्यताको जाना जा सकता है। व्यापक वस्तु, निराकार वस्तु, अपरिसीम वस्तुका प्रतिबिम्ब संभव नहीं है। आकाशका जिस प्रकार प्रतिबिम्ब नहीं होता, किन्तु आकाशमें स्थित परिच्छिन्न चन्द्र-सूर्य आदि ज्योतिर्मय पदार्थकी प्रतिबिम्बावस्था देखी जाती है। इसलिए अपरिच्छिन्न व्यापक असीम ब्रह्मकी प्रतिबिम्बावस्था असम्भव है। इसको छोड़कर परिच्छिन्न ज्योतिर्मय पदार्थ एवं स्वच्छ-जल-पदार्थ दोनोंका दर्शन-संयोग्यत्वके कारण एक ही विश्वके अन्दर स्थिति है। इसलिए उनका प्रतिबिम्ब संभव है।

(क्रमशः)